बृज राज किशोर 'राहगीर'

मौन हूँ तो मत समझ सहमत हूँ मैं।
जो अभी पहुँचा नहीं वो ख़त हूँ मैं।

बेहयाई से भरे संसार में,
रूह में ज़िंदा बची ग़ैरत हूँ मैं।

वे करोड़ों भी कमाकर ख़ुश नहीं,
कम सही पर चैन है, बरकत हूँ मैं।

झूठ से पर्दा हटाना शौक़ है,
चंद लोगों के लिए आफ़त हूँ मैं।

रह नहीं पाते कभी मेरे बिना,
मान भी जाओ कि इक आदत हूँ मैं।

सच्चाई का ज़िक्र छिड़ा जब महफ़िल में।
लोग बहुत से दिए दिखाई मुश्किल में।

सिर्फ़ डुबोने की ही आदत है जिसकी,
ढूँढ रही वो मौज सहारा साहिल में।

कोशिश तो की ही होगी मकतूलों ने,
शायद थोड़ा रहम बचा हो क़ातिल में।

बात तिरंगे की आई जब होठों पर,
एक अजब सा जज़्बा पाया हर दिल में।

'राहगीर' तो राहों का ही आशिक़ है,
उसे नहीं दिलचस्पी कोई मंज़िल में।

नदी के हमसफ़र बनकर किनारे साथ चलते हैं।
यहाँ लेकिन हमारे कब हमारे साथ चलते हैं।

पकड़कर उँगलियाँ जिनको क़दम रखना सिखाया था,
बुढ़ापे में कहाँ वे सब दुलारे साथ चलते हैं।

कभी चलती हुई गाड़ी से बाहर झाँक कर देखो,
सफ़र में दूर तक ये चाँद-तारे साथ चलते हैं।

बहुत आसां नहीं होता तुम्हारा हमक़दम होना,
अगर तुम साथ चलते हो, शरारे साथ चलते हैं।

नहीं जब रास्ता मिलता जहां के इस बियाबां में,
बहुत सी बार कुदरत के इशारे साथ चलते हैं।

दर्द को ज़रिया बनाए जी लिए।
ज़िंदगी बिन मुस्कुराए जी लिए।

चाहतों की रोशनी तो थी नहीं,
बस शमा दिल की जलाए जी लिए।

दास्तां अपनी बताते भी किसे,
अश्क़ पलकों में छुपाए जी लिए।

बेख़ुदी से राब्ता रखने लगे,
मैक़दे को घर बनाए जी लिए।

शायरी का तो हुनर भरपूर था,
पर सुखनवर बिन कहाए जी लिए।

ईशा अपार्टमेंट,रुड़की रोड, मेरठ

ISSN:2583-8849